शिक्षा का अधिकार कानून

कोठारी आयोग के समान स्कूल के सिद्धान्त से तुलना

विनोद रैना

शिक्षा का अधिकार विधेयक आने के बाद शुरू हुई बहस से उपजे सवालों को ध्यान में रखते हुए यह लेख इस विधेयक के प्रावधानों का खुलासा करता है। साथ ही कोठारी आयोग में वर्णित समान स्कूल प्रणाली के प्रस्ताव के साथ इस विधेयक के प्रावधानों की तुलना करते हुए तर्क करता है कि कुछ खामियों के बावजूद यह विधेयक भारतीय शिक्षा व्यवस्था के लिए एक प्रगतिशील कदम है और कोठारी आयोग की समान स्कूल प्रणाली से आगे का विचार है।

अगस्त 4, 2009 को लोक सभा द्वारा शिक्षा का अधिकार विधेयक पारित करने के साथ ही अन्ततः शिक्षा 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए मौलिक अधिकार बन गया है। राष्ट्रपति की मंजूरी के बाद इस अधिनियम को एक कानून के तौर पर अधिसूचित कर दिया जाएगा। यह 2002 में शिक्षा के अधिकार के रूप में अनुच्छेद 21 (अ) के तौर पर जोड़े गए संविधान के विवादित 86 वें संशोधन को प्रभावी बनाएगा। 2004 में इस विधेयक का प्रारूप बनाने के लिए केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् की एक समिति का गठन किए जाने के बाद, इस संघर्ष में 5 वर्ष बीत गए। इस अवधि में इस केन्द्रीय कानून को संबंधित राज्यों द्वारा इस अप्रभावी मॉडल विधेयक के आधार पर अपने कानून लाने, इसे नया जीवन देने और पारित करने से रोके रखा गया।

वर्तमान स्थिति में विधेयक के लिए पैरवी करने और अभियान चलाने को विश्राम दिया जाना चाहिए। अभी इसके उचित क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने का जरूरी काम होना चाहिए। लेकिन इस विधेयक की कुछ साफ कमियों, जैसे कि; बच्चे की परिभाषा की परिधि में 0 से 6 और 14 से 18 आयुवर्ग के बच्चों को लाने के लिए कानून में संशोधन के अभियान को न्यायायिक प्रक्रिया सहित, समान्तर रूप से जारी रखना होगा। संयुक्त राष्ट्रों के बाल अधिकार सम्मेलन के आधार पर 0 से 18 वर्ष तक की उम्र बच्चे की अन्तर्राष्ट्रीय रूप से मान्य परिभाषा है, जिस पर भारत एक हस्ताक्षरकर्ता है और 0-6 आयु को नीति निर्देशक सिद्धान्तों के मूल अनुच्छेद 45 में संविधान द्वारा आदेशित किया है और सर्वोच्च न्यायालय के 1993 के उन्नीकृष्णनन फैसले द्वारा पुनः पुष्ट किया गया है। हालांकि, विधेयक में निजी स्कूलों के बारे में कुछ नियंत्रित करने वाले हिस्से हैं पर विधेयक के अन्तिम प्रारूप में निजी स्कूलों को पूरी तरह नियंत्रित करने के हटा दिए गए प्रावधान को पुनः डालने, इसी क्रम में बहुत से स्कूलों में बेसब्र और अनियंत्रित फीस वसूली एवं इन स्कूलों में संदेहास्पद गुणवत्ता की धारणा के प्रचलन को रोकने का अभियान जारी रखना होगा।

हालांकि, एक प्रचलित मत यह है कि यह विधेयक निजी स्कूलों से पूरी तरह बाहर आने तक मान्य नहीं होगा; कुछ टिप्पणीकार यहां तक दावा कर रहे हैं कि यह विधेयक निजीकरण को 'बढ़ावा' देगा। 11 अगस्त, 2009 के *हिन्दू* में हाल का एक उदाहरण है, ज्ञान आयोग के पूर्व उपाध्यक्ष और सम्मानित वैज्ञानिक प्रो. पी. एम. भार्गव कहते हैं कि, *''राज्यसभा और लोकसभा द्वारा पारित, शिक्षा का अधिकार विधेयक... यदि सरकार द्वारा अधिसूचित कर दिया जाता है तो वह केवल उनके लिए वरदान होगा जो स्कूल व्यवसाय में पैसा कमाते हैं, जबकि उनके लिए यह खतरनाक होगा जिनके पास आज भी शिक्षा की पहुंच नहीं है। दुर्भाग्य से, धनिक और शासक वर्ग यही चाहता है।''* यह कथन आरोप लगाता है कि इस विधेयक में सरकारी स्कूल व्यवस्था की बेहतरी के लिए कुछ भी नहीं है और न ही निजी स्कूलों के अवांछित व्यवहारों को रोकने वाले प्रावधान हैं। ये दोनों दावे तथ्यात्मक रूप से गलत हैं, इस पर आगे चर्चा करेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस विधेयक के अस्वीकार के पीछे आलोचकों का एकमात्र सरोकार यह है कि इस विधेयक में फीस वसूली के

परिचय : जाने-माने शिक्षाविद्, केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् के सदस्य, एकलव्य, भोपाल के संस्थापक सदस्य, संप्रति : भारत ज्ञान विज्ञान समिति के सचिव।

संपर्क : डी-3, कैलबरी लेन, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

अधिकार पर रोक होनी चाहिए, उन्हें यह निजी स्कूलों के अन्त का सूचक लगता है। इसके अलावा, उनके लिए सरकारी स्कूलों में सुधार एक बहुत छोटा मसला है। हालांकि, किसी को भी बच्चों की शिक्षा से मुनाफा कमाने की अनुमति नहीं दी जाएगी, निःशुल्क शिक्षा का प्राप्त मौलिक अधिकार, लेकिन इससे सहमति के बाद भी यह जांचना उचित होगा कि इस भावना को वर्तमान समय में राजनैतिक और संवैधानिक रूप से कानून में उतारना कितना व्यवहारिक होगा अथवा क्या यह अतीत में संभव था जब कि प्रगतिशील और युगान्तकारी कोठारी आयोग की रिपोर्ट तैयार की गई थी और शिक्षा का निजीकरण बहुत कम फैलाव पर था।

समान स्कूल

जब से केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् की समिति ने 2004 में शिक्षा के अधिकार विधेयक का प्रारूप बनाने का काम शुरू किया, प्रस्तावित कानून से ऐसी शिक्षा को पोषित करने की अपेक्षाएं व्यक्त की गईं; जो वर्ग, जाति और जेण्डर के परे जाकर समानता एवं सामाजिक एकीकरण दे सके। ये सरोकार इस जमीनी यथार्थ से जुड़े थे कि भारतीय शिक्षा जाति, वर्ग और धार्मिक सीमाओं के साथ इस तरह भिन्नतापूर्ण और विषमतापूर्ण हो चुकी है कि, इन दोषों को कम करने के बजाय वह इन्हें बढ़ाने में मदद कर सकती है।

"कोठारी आयोग की रिपोर्ट ने पहले से देख लिया था कि गुणवत्तायुक्त स्कूलों का एक छोटा हिस्सा कम से कम एक दशक अथवा अधिक समय तक रहेगा और स्कूलों के केवल एक बहुत छोटे हिस्से, दस प्रतिशत, को 'वांछित मानदण्डों' तक ले जाया जा सकता है। इसमें निहित है कि स्कूलों के बड़े हिस्से की गुणवत्ता में भेद बने रहेंगे"

गैर-अनुदानित और अनियंत्रित व्यावसायिक स्कूलों का विस्फोट, पहले से ही सरकारी स्कूलों की खराब गुणवत्ता को जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम और सर्व शिक्षा अभियान योजनाओं द्वारा हल्का किए जाने और सस्ते शिक्षा गारंटी केन्द्रों, वैकल्पिक स्कूलों आदि के साथ ही, अयोग्य अनियत पैरा शिक्षकों ने वर्ग और जाति के दोषों को स्कूली शिक्षा में गहरा किया है और उन्हें एक चक्कर में ही घूमते रहने के लिए धकेला है। यह बहुतों की आशा और मांग है कि प्रस्तावित कानून इस चक्कर में घूमते रहने के इस दृश्य पर लगाम लगाए।

ऐसी आशा और मांग 1966 के शिक्षा आयोग की रिपोर्ट में लगभग एकरूप में मौजूद है, जिसे प्रचलन में कोठारी आयोग की रिपोर्ट कहा जाता है, जैसा कि प्रो. भार्गव के 'हिन्दू' के लेख में दावा किया गया है: *''सही मायने में एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में और राष्ट्रीय गरिमा को कायम रखते हुए, भारत को एक ज्ञान समाज की आवश्यकता है जिसमें प्रत्येक नागरिक के पास न्यूनतम ज्ञान हो। यह देश ऐसा केवल शिक्षा के गैर-व्यावसायीकरण और गैर-उपभोग्य वस्तु बनाने के जरिए तथा समान स्कूल प्रणाली को स्थापित करके ही कर सकता है (जिसकी मांग 1960 के दशक के आरंभ से कोठारी आयोग के दिनों से लगातार की जा रही है) जिसमें कि अमीर और गरीब शिक्षार्थी अपने पड़ोस के समान स्कूल में बिना कोई फीस दिए और नई पाठ्यचर्या की रूपरेखा के साथ अध्ययन करेंगे।''* जैसा कि हम बाद में चर्चा करेंगे, वास्तव में इस उम्मीद को आधार नहीं मिलता क्योंकि कोठारी आयोग ने ही निर्णय दिया कि निजी स्कूलों को समान स्कूल प्रणाली से बाहर रखा जाएगा। समान स्कूल प्रणाली का पुरजोर समर्थन करने वाले हाल में शिक्षा के अधिकार विधेयक को खारिज करने की इस हद तक चले गए हैं कि वे लोकसभा की अध्यक्षा श्रीमती मीरा कुमार से इसे लोकसभा में प्रस्तावित करने से तब तक रोके रखने की मांग कर रहे हैं, जब तक इसे कोठारी आयोग की रिपोर्ट में रेखांकित सार्वजनिक शिक्षा की समान स्कूल प्रणाली के अनुरूप नहीं बना दिया जाए। उनके तर्क का सार यह दिखाई देता है कि कोठारी आयोग की रिपोर्ट की राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली समान स्कूल के साथ सरकार पर भिन्न 'गुणवत्ता' के- नवोदय, सर्वोदय और केन्द्रीय स्कूलों पर रोक का दबाव डालती है और खासतौर से, यह निजी गैर-अनुदानित स्कूलों के फीस वसूलने के अधिकार पर तब तक रोक लगाती है, जब तक कि वे 6 से 14 आयुवर्ग के सभी बच्चों को मुफ्त शिक्षा प्रदान करने वाले समान पड़ोसी स्कूल का हिस्सा नहीं बन जाएं। हालांकि, शिक्षा का अधिकार कानून के ऐसे विरोधियों के जोरदार प्रस्तुतिकरण से यह स्पष्ट नहीं होता कि वास्तव में वे कोठारी आयोग की रिपोर्ट की पूरी विषयवस्तु के बारे में सचेत हैं अथवा वे रिपोर्ट की विषयवस्तु से अपने समर्थन के लिए चयनशील हैं।

शिक्षा की बराबर और समतावादी व्यवस्था की ओर बढ़ने की जरूरत पर यहां किसी भी तरह का मतभेद नहीं हो सकता, लेकिन कोठारी आयोग की रिपोर्ट में किए गए ऐसे दावे के बारे में निरपेक्ष पुनर्चिन्तन करने की आवश्यकता है। किसी को भी यह ध्यान में रखने की जरूरत है कि 1966 में जब यह रिपोर्ट आई, तब बाजार की ताकतें बहुत नियंत्रण में थीं, जब इस रिपोर्ट को स्वीकार किया गया तब भी निजी स्कूलों से निपटने में संवैधानिक बाधाएं थीं। यदि यह रिपोर्ट, उस समय जब राष्ट्रवादी मूल्य प्रचलन में थे, इसके समतावादी दावे पर जोर देती हुई भी निजीकरण के प्रेत को अनहुआ नहीं कर सकी, तो 2009 में ऐसा कर पाने के राजनैतिक अवसर

कितने हैं, जबकि 11 वें योजना काल के दृष्टिपत्र के प्रारूप में योजना आयोग भी स्कूली शिक्षा के लिए वाउचर प्रणाली को अपनाना चाहता है ?

कोठारी आयोग के निरूपण

कोठारी आयोग की रिपोर्ट में समान स्कूल की अवधारणा बहुत से स्थानों पर मिल सकती है। समान स्कूल प्रणाली को समाहित करने वाली शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली रिपोर्ट के जाने-माने खण्ड 1.36 में स्पष्ट रूप से इतने विस्तार से प्रतिपादित है कि यहां पूरी नहीं दी जा सकती। हालांकि खण्ड 1.38 में इसका सार मिल सकता है :

यदि... शिक्षा प्रणाली को सामान्य रूप से राष्ट्रीय विकास का एक सशक्त औजार बनाना है- और विशेषरूप से सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण का - तो हमें सार्वजनिक शिक्षा की समान स्कूल प्रणाली के लक्ष्य की ओर बढ़ना होगा।

- *जो कि जाति, संप्रदाय, समुदाय, धर्म, आर्थिक हालात अथवा सामाजिक स्थिति का ख्याल किए बिना सभी बच्चों के लिए खुली होगी;*
- *जहां अच्छी शिक्षा तक पहुंच संपत्ति अथवा वर्ग के बजाय **योग्यता** पर निर्भर करेगी;*
- *जो सभी स्कूलों में उचित मानदण्डों को पूरा करेगी और कम से कम एक **उचित अनुपात में गुणवत्तायुक्त संस्थानों में** प्रदान की जाएगी;*
- *जिनमें टयूशन फीस वसूल नहीं की जाएगी; और*
- *जो औसत माता-पिता की जरूरतों को पूरा करेगी ताकि वह सामान्यरूप से अपने बच्चों को व्यवस्था से बाहर मंहगे स्कूलों में भेजने की जरूरत महसूस नहीं करें।*

'अधिकार' के बजाय 'योग्यता' पद का आवाहन और एक 'उचित अनुपात में गुणवत्तायुक्त संस्थानों' के अबाधित प्रावधानों के संदर्भ विशेष ध्यान की मांग करते हैं। गुणवत्तायुक्त संस्थानों का ऐसा ही प्रावधान आगे खण्ड 10.02 में गिनाया गया है-

देशभर में स्कूल सुधार का कार्यक्रम तीन उद्देश्यों के साथ आयोजित किया जाए : (अ) सभी स्कूलों को कम से कम एक निर्धारित न्यूनतम स्तर तक ले जाने के लिए; (ब) प्रत्येक स्कूल को उसकी क्षमतानुसार अधिकतम स्तर तक पहुंचाने के लिए सहयोग करना; (स) अगली दस वर्ष की अवधि के दौरान, **कम से कम दस प्रतिशत संस्थानों को वांछित मानदण्डों तक पहुंचाना।**

स्पष्ट रूप से, कोठारी आयोग की रिपोर्ट ने पहले से देख लिया था कि गुणवत्तायुक्त स्कूलों का एक छोटा हिस्सा कम से कम एक दशक अथवा अधिक समय तक रहेगा और स्कूलों के केवल एक बहुत छोटे हिस्से, दस प्रतिशत, को 'वांछित मानदण्डों' तक ले जाया जा सकता है। इसमें निहित है कि स्कूलों के बड़े हिस्से की गुणवत्ता में भेद बने रहेंगे (एक निर्धारित न्यूनतम स्तर तक ले जाने के लिए)। खण्ड 10. 31 में रिपोर्ट स्पष्ट रूप से गुणवत्ता पर आधारित स्कूलों की तीन श्रेणियां, ए, बी, और सी का वर्गीकरण सुझाती है, जिसमें समान स्कूल की अवधारणा कुछ हल्की अथवा खारिज होती हुई दिखाई देगी। हालांकि खण्ड 10.31 में स्कूलों की भिन्नता को खासतौर पर स्पष्ट रूप से इस तरह कहा गया है :

संसाधनों की कमी की वजह से सभी स्कूलों को उच्च स्तर तक ले जाने का काम कम समय में संभव नहीं हो पाएगा। अतः विकास के लिए रणनीति निम्न आधारों पर तय की जाएगी :

1. कार्यक्रम में हर स्तर पर न्यूनतम अनुपात के **'गुणवत्तायुक्त' स्कूलों** के बनाने को अधिकतम प्राथमिकता दी जाएगी जो कि दिशा तय करने में मददगार संस्थान होंगे... **उपलब्ध संसाधनों को प्राथमिक स्कूलों के कुछ केन्द्रों- दस प्रतिशत गुणवत्तायुक्त माध्यमिक स्कूलों- प्रत्येक ब्लॉक पर एक में केन्द्रित करने की आवश्यकता है।**
2. उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों पर, **इन (गुणवत्तायुक्त) स्कूलों में प्रवेश को योग्यता के आधार पर** यह सुनिश्चित करते हुए नियंत्रित किया जाए कि समाज के सभी स्तरों के प्रतिभावान बच्चों को यथासंभव बेहतरीन शिक्षा प्राप्त हो।

वास्तव में यह इस पूरी रिपोर्ट का एक सबसे समस्याजनक सुझाव है। लोकप्रिय मान्यता से विपरीत, यह सरकार के केन्द्रीय, नवोदय, सर्वोदय और अन्य 'गुणवत्तायुक्त' स्कूलों को केवल वैधानिकता ही नहीं देता, यहां तक कि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के 6000 गुणवत्तायुक्त स्कूलों, प्रत्येक ब्लॉक में एक स्कूल, की घोषणा को मान्यता प्रदान करता है; आगे यह उनमें योग्यता के आधार पर प्रवेश को सीमित करता है, जो कि सरकारी स्कूल व्यवस्था में प्रवेश परीक्षाओं के पेंडोरा बक्से और अन्य छंटाई की प्रक्रियाओं को खोलता है।

समान स्कूल प्रणाली को क्रियान्वित करने में तात्कालिकता की कमी और जांच के लिए प्रस्ताव को प्रायोगिक तौर पर लागू करने के लिए संबंधित लोगों की अनुमति का जिक्र खण्ड 10.19 में मिल सकता है :

हमारा मानना है कि पड़ोसी स्कूल की अवधारणाा को 20 वर्षों में प्राप्त करने के लिए एक अच्छी तरह नियोजित कार्यक्रम के रूप में दीर्घावधि के लक्ष्य के तौर पर स्वीकार किया जाए। इसे प्राप्त करने की निम्नलिखित रणनीति होगी :

- आगामी दस वर्ष की अवधि के दौरान, दो कार्यक्रम क्रमशः आगे बढ़ाए जाएं। पहला है, सभी प्राथमिक स्कूलों में न्यूनतम निर्धारित स्तर तक सुधार करना और उनमें से लगभग दस प्रतिशत को गुणवत्ता के उच्च मानदण्डों तक बढ़ाना।
- समान्तर रूप से, **पड़ोसी स्कूल प्रणाली को प्रायोगिक परियोजना के तौर पर कुछ उन इलाकों में निम्न प्राथमिक स्तर पर प्रस्तावित किया जाए जहां जनमत इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के पक्ष में हो।**

निजी स्कूल

हालांकि यहां सरकारी स्कूल प्रणाली के लिए प्रस्तावों का एक नमूना है, सहायता विहीन निजी स्कूलों के बारे में क्या है, जिन्हें रिपोर्ट में 'स्वायत्त' स्कूल कहा गया है ? पुनः, रिपोर्ट उन्हें समान स्कूल के हिस्से के तौर पर प्रस्तावित करती है, इस लोकप्रिय धारणा के विपरीत, यह सर्वप्रथम उनकी संवैधानिक वैधता (खण्ड 10.77 में) को स्वीकार करती है और इसके बाद उन्हें सार्वजनिक शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली (समान स्कूल) से निम्न प्रकार से **बाहर** करती है :

''सभी नागरिकों को किसी भी उद्देश्य के लिए अनुच्छेद 19 की धारा (सी) और (जी) के तहत निजी स्कूलों की स्थापना का अधिकार दिया गया है, जो प्रावधान करता है कि सभी नागरिकों को 'संगठन बनाने' और 'किसी भी पेशे को अपनाने अथवा किसी भी धंधे को जारी रखने, व्यापार अथवा व्यवसाय' का अधिकार होगा और जो निश्चित रूप से व्यक्तिओं और समूहों को अपनी पसंद के शैक्षिक संस्थान बनाने और चलाने के अधिकार को सुरक्षित करता है। **इसलिए, निजी स्कूल, संविधान के प्रावधानों के तहत स्थापित किए जा सकेंगे और यदि वे राज्य से सहायता अथवा मान्यता प्राप्त नहीं करते तो उनके साथ सार्वजनिक शिक्षा की राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली से बाहर रहने वाले की तरह बरताव किया जाएगा।''**

समान स्कूली व्यवस्था और सार्वजनिक शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली से निजी स्कूलों के बाहर रखने को आगे रिपोर्ट के अध्याय 10 के सार में विशेष जोर के साथ दोहराया गया है :

सार्वजनिक शिक्षा की समान स्कूल प्रणाली सभी सरकारी स्कूलों, स्थानीय निकाय के सभी स्कूलों और समस्त अनुदानित निजी स्कूलों को समाहित करेगी। **केवल दो प्रकार के स्कूल-स्वायत्त निजी स्कूल और बिना मान्यता प्राप्त स्कूल- ही इससे बाहर रहेंगे।**

> **"यह विधेयक कक्षा-कक्षों की संख्या, शिक्षण घंटों, पुस्तकालय, शिक्षण सामग्री, बालक और बालिकाओं के लिए अलग-अलग टॉयलेट, पीने का पानी, खेल मैदान और शिक्षक-बालक अनुपात के औसत को जिले अथवा ब्लॉक के बजाय प्रत्येक स्कूल में बनाए रखने को सुनिश्चित करेगा।"**

इसमें कोई ताज्जुब नहीं है कि भारत सरकार ने रिपोर्ट के निम्न सार के हिस्से के सुझावों को स्वीकार किया :

सामाजिक सामंजस्य और राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा आयोग द्वारा प्रस्तावित समान स्कूल प्रणाली को अपनाया जाना चाहिए। सामान्य स्कूलों में शिक्षा के मानदण्डों में बेहतरी के प्रयास किए जाने चाहिएं। पब्लिक स्कूलों की तरह सभी विशेष स्कूलों में बच्चों को योग्यता के आधार पर भर्ती करना चाहिए और सामाजिक वर्गों के अलगाव को रोकने के लिए तय अनुपात में मुफ्त छात्रवृत्ति उपलब्ध करानी चाहिए। हालांकि, यह संविधान के अनुच्छेद 30 के तहत अल्पसंख्यकों के अधिकारों को प्रभावित नहीं करेगा।

(4 बी, ''शिक्षा आयोग की रिपोर्ट पर भारत सरकार द्वारा जारी प्रस्ताव'')

'विशेष स्कूल' और 'पब्लिक स्कूल' (एक शब्द जो अंग्रेजों के निजी स्कूलों की परंपरा से आया है) शब्द के प्रयोग को एक विशेष श्रेणी स्कूलों के रूप दर्ज करता है जहां समान स्कूल प्रणाली लागू नहीं होगी, लेकिन जो बच्चों को प्रस्तावित अनुपात में मुफ्त छात्रवृत्ति के तौर पर भर्ती करने के लिए बाध्य होंगे। रिपोर्ट में, अन्यत्र कहीं, यह सुझाया गया है कि जिन शिक्षार्थियों को इन विशेष श्रेणियों के स्कूलों के लिए योग्यता के आधार पर चुना गया है, उनकी मुफ्त शिक्षा पर सरकार को छात्रवृत्ति के रूप में खर्च करना चाहिए (खण्ड 10.31)। यह भी दर्ज करना चाहिए कि अल्पसंख्यक संस्थानों को भी समान स्कूल प्रणाली से मुक्त किया गया है, जहां कि शिक्षा का अधिकार कानून, 25 प्रतिशत के पड़ोसी तय हिस्से सहित, इन्हें अपने किन्हीं भी प्रावधानों में मुक्त नहीं करता।

रिपोर्ट निजी स्कूलों की प्रशंसा की इस हद तक जाती है (खण्ड 10. 12) और उनकी भूमिका को गुणवत्ता सुधार के 'बीज रूप' में देखती है :

उच्च मानदण्डों को बरकरार रखने वाले और समर्पित एवं योग्य शिक्षकों की सेवाओं को आकर्षित करने के काबिल अच्छे निजी स्कूलों को चिह्नित किया जाना चाहिए और उन्हें अधिक स्वतंत्रता तथा उचित आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए। यहां तक कि ये संस्थान आज तक व्यवस्था में गुणवत्तायुक्त स्कूल हैं और अन्य स्कूलों के लिए दिशा तय करते हैं। ये तुरंत और प्रभावी रूप से सार्वजनिक शिक्षा की समान स्कूल प्रणाली में 'बीज रूप' में विकसित किए जा सकते हैं।

शिक्षा का अधिकार विधेयक

अब हम इस विधेयक की कोठारी आयोग के सुझावों से तथाकथित विचलन के संदर्भ में किन्हीं तार्किक निष्कर्षों तक पहुंचने के लिए शिक्षा के अधिकार विधेयक के मुख्य प्रावधानों की कोठारी आयोग की रिपोर्ट के सुझावों से तुलना करना चाहेंगे।

कोठारी आयोग की भांति, विधेयक का प्रारूप स्कूलों की चार श्रेणियां चिह्नित करता है-सरकारी (या तो शिक्षा विभाग अथवा स्थानीय निकायों के अधीन), निजी लेकिन सरकार द्वारा सहायता प्राप्त, निजी गैर-अनुदानित और विशेष श्रेणी के सरकारी स्कूल-केन्द्रीय, नवोदय इत्यादि (कोठारी आयोग में माने गए 'गुणवत्ता स्कूल')।

विधेयक पूरे देश में प्रत्येक 6 से 14 वर्ष के बच्चे की निःशुल्क शिक्षा के लिए पड़ोसी सरकारी स्कूल की स्थापना के बारे में कानून के लागू होने के समय से तीन वर्ष की बात करता है। कोठारी आयोग की रिपोर्ट ने स्थानीय लोगों की सहमति से, इसे कुछ स्थानों पर प्रायोगिक तौर पर करने का सुझाव दिया है। यह विधेयक अनुदानित निजी स्कूलों को मिलने वाली सहायता के अनुपात में, जिसका न्यूनतम 25 प्रतिशत है, निःशुल्क प्रवेश के लिए बाध्य करता है। इसके मायने हैं कि यदि कोई स्कूल इसकी सहायता की 70 प्रतिशत राशि सरकार से प्राप्त करता है तो यह अपने पड़ोस के 70 प्रतिशत बच्चों को निःशुल्क शिक्षा के लिए प्रवेश देगा और इन बच्चों के लिए राज्य से अतिरिक्त राशि नहीं मिलेगी। निजी स्कूलों, अल्पसंख्यक स्कूलों और विशेष श्रेणी के स्कूलों के लिए प्रतिभावान शिक्षार्थियों को सरकार से छात्रवृत्ति और निःशुल्क शिक्षा की राशि के अलावा, यह विधेयक 25 प्रतिशत कमजोर तबकों के शिक्षार्थियों को, उनकी योग्यता की जांच अथवा प्रवेश परीक्षा में शामिल किए बिना, पड़ोस से प्रवेश देने के लिए बाध्य करता है। साथ ही यह प्रावधान करता है कि बच्चों के इस अनुपात के लिए राज्य द्वारा प्रति बच्चा खर्च राशि अथवा स्कूल खर्च राशि, जो भी कम हो, का भुगतान स्कूल को कर दिया जाएगा।

कोठारी आयोग की रिपोर्ट से भिन्न, यह विधेयक स्वायत्त, अल्पसंख्यक और विशेष श्रेणी के स्कूलों को बाहर नहीं करता बल्कि पूरी तरह 'योग्यता', 'प्रतिभा' छात्रवृत्ति, निःशुल्क शिक्षा और छंटाई प्रक्रियाओं के उल्लेख से पूरी तरह परे जाकर; उन्हें एक पड़ोसी स्कूल की समानुपातिक जिम्मेदारी की परिधि में लाता है। यह कोठारी आयोग की रिपोर्ट से गिरावट है अथवा सुधार ? हालांकि यह विचित्र बात है कि समान स्कूल के वही पैरवीकार लाभान्वित और वंचित वर्ग के बच्चों को एक साथ मिलाने के इस प्रावधान की आलोचना कर रहे हैं और इसे निजीकरण के बढ़ावे के रूप में देखते हैं। इस प्रावधान के पीछे राज्य के दायित्व को 25 प्रतिशत की सीमा तक निजी स्कूलों को सौंपने का विचार नहीं है। यह विभिन्न वर्गों के बच्चों को वैधानिक रूप से साथ मिलाने को नियम के तौर पर निर्धारित करता है, जो कि वास्तविक रूप में 'अभिजात' बच्चों के लिए शिक्षणशास्त्र के लिहाज से फायदेमंद हो सकता है। जब तक 'अभिजात' बच्चों की भारत के बच्चों, जो सामान्यतया उन्हें दिखाई नहीं देते, से लम्बी अन्तःक्रिया होगी, वही उन्हें 'इंडिया', जो वास्तव में भारत है, के प्रति संवेदनशील बना सकेगी (जैसा कि लोरेटो, सीयालदा की अगुवा सिस्टर सिरिल के ऐसे ही एक प्रयोग का अनुभव है)। इन बच्चों के भुगतान के लिए निजी अथवा समुदाय नहीं, अनुच्छेद 21 अ राज्य को निःशुल्क शिक्षा के लिए बांधता है। यदि ये 25 प्रतिशत बच्चे निजी पड़ोसी स्कूल में नहीं जा रहे होते, राज्य किसी तरह प्रति शिक्षार्थी दर पर इन्हें शिक्षा प्रदान करता, जिसका इन निजी स्कूलों को भुगतान किया जाएगा। इसे किस प्रकार निजीकरण का बढ़ावा देने वाला कहा जा सकता है ? कोठारी आयोग ने कहा है कि योग्य बच्चों को इन स्कूलों में राज्य के भुगतान पर छात्रवृत्ति और निःशुल्क शिक्षा के लिए भेजा जाएगा-इसमें निहित होगा कि कोठारी आयोग भी निजीकरण को बढ़ावा दे रहा था ! और यदि इसका एक मुख्य उद्देश्य निजीकरण को बढ़ावा देना था तो इस धरती पर, निजी स्कूलों की लॉबी होती, सीआईई जैसे उनके पैरवीकार और सरकार में उनके छछूंदरों से, 2005 में इस विधेयक के प्रारूप बनाने के दौरान प्रेस में खुलासा होने पर इस प्रावधान को हटाने के लिए लड़ना एक बहुत मुश्किल काम क्यों होता ? इस विधेयक में इस प्रावधान को बनाए रखने के खिलाफ निजी लॉबियों से एक बहुत मुश्किल लड़ाई थी; क्या आलोचक 'निजी' हितों को निजी लॉबियों से बेहतर समझने का दावा करते हैं ?

गुणवत्ता के समग्र सुधार के संदर्भ में कोठारी आयोग की रिपोर्ट उल्लेख करती है, 'सभी प्राथमिक स्कूलों का न्यूनतम निर्धारित स्तर तक सुधार करना पहला काम है'। इस विधेयक के प्रपत्र अनिवार्य न्यूनतम निर्धारित मानदण्डों, शिक्षक-छात्र अनुपात और बुनियादी ढांचागत जरूरतों के बिना, किसी भी- सरकारी, सहायता प्राप्त और निजी स्कूल को संचालन की अनुमति नहीं दी जाएगी। यह विधेयक कक्षा-कक्षों की संख्या, शिक्षण घंटों, पुस्तकालय, शिक्षण सामग्री, बालक और बालिकाओं के लिए अलग-अलग टॉयलेट, पीने का पानी, खेल मैदान और शिक्षक-बालक अनुपात के औसत को जिले अथवा ब्लॉक के बजाय प्रत्येक स्कूल में बनाए रखने को सुनिश्चित करेगा। पूरे देश में शिक्षकों की गुणवत्ता में एकरूपता लाने के लिए यह केन्द्रीय स्तर पर शिक्षकों की योग्यता को अकादमिक प्राधिकार द्वारा निर्धारित करने और उनके अकादमिक दायित्वों को निजी एवं राजकीय स्कूलों में रेखांकित करता है तथा उनके वेतन को इन योग्यताओं के अनुरूप निर्धारित करता है। ये प्रावधान शिक्षा गारंटी

केन्द्रों, पैरा शिक्षकों और इसी तरह की समान गिरावटों को अवैध घोषित करता है। जिन्हें जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम ने आरंभ किया तथा जिन्हें सर्व शिक्षा अभियान के माध्यम से जारी रखा गया है। इन प्रतिमानों, मानदण्डों और योग्य शिक्षकों के अभाव वाले अनियमित निजी स्कूलों (दुकानों) को इन मानदण्डों को प्राप्त करने के लिए या तो बहुत निवेश करना होगा और मान्यता लेनी होगी या बंद कर देना होगा। यह विधेयक विषयवस्तु की गुणवत्ता और प्रक्रियाओं को तय करने के सिद्धान्तों को तय करता है। जिनमें गतिविधि आधारित और बाल केन्द्रित शिक्षणशास्त्र तथा बच्चों पर लादे गए असफलता के कलंक को बाहर करने के लिए सत्ता और व्यापक मूल्यांकन से रोके नहीं रखने की नीति से संगत बनाने के प्रावधान हैं। यह शिक्षकों के द्वारा निजी ट्यूशन, बच्चों के शारीरिक दण्ड और मानसिक पीड़ा का निषेध करता है, मानसिक आघात, व्यग्रता और भय से मुक्त बच्चों की शिक्षा की मांग करता है। यह माता-पिता के लिए किसी तरह के दण्ड को निर्धारित नहीं करता, 'अनिवार्य' को राज्य द्वारा प्रदान करने की बाध्यता के सीधे रूप में परिभाषित करता है। यह 'निःशुल्क' को केवल फीस के भुगतान न करने के अर्थ में नहीं बल्कि बच्चों को स्कूल में भागीदारी करने से रोकने वाली सभी आर्थिक बाधाओं से मुक्ति के अर्थ में परिभाषित करता है (जैसा कि कोठारी आयोग की रिपोर्ट कहती है)। यह तबादला और जन्म प्रमाण पत्र के अभाव में गरीब और प्रवासी बच्चों के मामले में प्रवेश देने से स्कूलों के इंकार के संकटपूर्ण प्रावधान का निषेध करता है। क्या ये समावेश और गुणवत्ता में गिरावट के तत्व हैं अथवा कोठारी आयोग के सुझावों में बेहतरी के ? अतः इस दृष्टिकोण का यह आधार पूरी तरह अस्पष्ट है कि कानून 'केवल उनके लिए वरदान होगा जो स्कूल व्यवसाय में धन कमाना चाहते हैं, जबकि यह उनके लिए भयानक होगा जिनके पास आज भी शिक्षा की पहुंच नहीं है'- यह कानून तय गुणवत्ता के पड़ोसी स्कूल में पहुंच को अब प्रत्येक बच्चे के अधिकार के रूप में मान्य करता है।

"यहां एक सामान्य सहमति बन चुकी है कि लोकतंत्र के मूल्य और बहस, धर्मनिरपेक्षता, सहयोग आदि जो हमारे संविधान में संजोए हुए हैं, शैक्षिक व्यवहार के निर्देशक मूल्य होने चाहिएं। यह विधेयक खासतौर पर निर्धारित करता है कि पाठ्यचर्या, विषयवस्तु और प्रक्रिया की भारत के संवैधानिक मूल्यों से अनुरूपता होनी चाहिए।"

भगवाकरण की प्रकट बहसों से, स्कूली शिक्षा द्वारा बढ़ावा दिए जाने योग्य मूल्यों का प्रश्न एक गंभीर मुद्दा बन चुका है। प्रगतिशील तत्व लगातार पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक लेखन को निर्धारित करने में ऐसी गिरावटों को रोकने के लिए कानूनी नियंत्रण के किसी तरीके की आवाज उठाते रहे हैं। यहां एक सामान्य सहमति बन चुकी है कि लोकतंत्र के मूल्य और बहस, धर्मनिरपेक्षता, सहयोग आदि जो हमारे संविधान में संजोए हुए हैं, शैक्षिक व्यवहार के निर्देशक मूल्य होने चाहिएं। यह विधेयक खासतौर पर निर्धारित करता है कि पाठ्यचर्या, विषयवस्तु और प्रक्रिया की भारत के संवैधानिक मूल्यों से अनुरूपता होनी चाहिए।

विवाद का दूसरा बिन्दु शिक्षकों के गैर-अकादमिक कार्यों का है। चुनावों, दसवर्षीय जनगणना और आपात-प्रबंधन जैसे शिक्षकों को लगाए जा सकने (लगाया जाएगा, नहीं) वाले कामों के अतिरिक्त अन्य सभी चीजों के निषेध को प्रारूप निर्धारित करता है। इसके बारे में स्वाभाविक असंतोष है। दुर्भाग्य से, यह संवैधानिक प्रावधानों से निकलता है जो निर्धारित करते हैं कि प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को इन कार्यों के अधीन बुलाया जा सकता है (एक आईएएस अधिकारी को भी चुनाव ड्यूटी के लिए कार्यमुक्त किया जा सकता है)। चुनाव आयोग की टिप्पणी का निम्न सार इसे अधिक स्पष्ट करेगा :

भारत के संविधान का अनुच्छेद 324 (6) खण्ड 159 के जन प्रतिनिधित्व कानून, 1951 के साथ पढ़ने पर इसे बाध्यकारी बनाता है कि राष्ट्रपति (भारत सरकार) अथवा राज्यपाल (किसी भी राज्य सरकार का) साथ ही साथ प्रत्येक स्थानीय निकाय, कभी भी चुनाव आयोग के निवेदन पर अथवा क्षेत्रीय कमिश्नर अथवा मुख्य चुनाव अधिकारी अथवा निर्वाचित अधिकारी, चुनाव के संबंध में किसी भी तरह की ड्यूटी के लिए जैसे स्टाफ की आवश्यकता हो, जैसा भी मामला हो, चुनाव आयोग के लिए उपलब्ध रहेंगे।

भारत का चुनाव आयोग बनाम भारतीय स्टेट बैंक में सर्वोच्च न्यायालय ने इसे बहुत अधिक स्पष्ट किया कि सार्वजनिक सेवा और केन्द्र अथवा राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त कर्मचारी, साथ ही स्थानीय निकायों के कार्मिक चुनाव के कार्य के लिए उपलब्ध रहेंगे और ऐसा कोई भी सरकारी कर्मचारी अथवा स्थानीय निकाय कार्मिक उचित दण्ड पाएगा, जो इस मांग की अवज्ञा करेगा।

यह कानून संविधान के किन्हीं भी वर्तमान प्रावधानों का उल्लंघन नहीं कर सकता। यदि यह विधेयक खासतौर से यह कहता है कि शिक्षकों को चुनावों में नहीं लगाया जा सकता, यह संविधान के वर्तमान अनुच्छेद 324 (6) का उल्लंघन होगा। अतः इस तरह के कार्यों से शिक्षकों की मुक्ति संविधान के अनुच्छेद 324 (6) में संशोधन की मांग करती है, जैसे कि निजी स्कूलों पर प्रतिबंध संविधान के अनुच्छेद 19 (सी) और (जी) में संशोधन की मांग करता है।

बहस और कार्य

ये कुछ तुलना अभी के लिए पर्याप्त होंगी। यह तथ्य है कि बहुत से लोगों ने रिपोर्ट को पूरा अथवा सावधानी से नहीं पढ़ा है और सुनी-सुनाई बात से धारणा बनाते हैं। आंतरिक असंगतता कोठारी आयोग की रिपोर्ट की खास समस्या नहीं है-प्रगतिशील सिद्धान्तों में दोतरफापन और अनिश्चितता अधिकतर शैक्षिक रिपोर्टों की निशानी है; अलग-अलग खण्ड एक-दूसरे का विरोध करने की बदतर स्थिति में होते हैं (इसलिए किसी को भी कोठारी आयोग की रिपोर्ट के समान स्कूल पर प्रायः संदर्भित खण्ड 1.36 से परे जाने की जरूरत होती है)।

ऐसा क्यों है ? यह एक बड़ा राजनैतिक सवाल है। मध्यवर्गीय भारतीय राष्ट्र-राज्य विवादित निहित स्वार्थों, आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और राजनैतिक प्रभावों के योग से बना और संरचित है, जो इसके सयानेपन में परिलक्षित हैं। अतः किसी भी क्षेत्र की सार्वजनिक नीति का अन्त 'सभी को प्रसन्न' करने वाले प्रयास पर समाप्त होता है, जो दोतरफापन, अनिश्चितता और विरोधाभास से बचने में असफल है। अन्ततः एक विधेयक अथवा एक संसदीय रिपोर्ट शैक्षिक के बजाय राजनैतिक दस्तावेज होता है और प्रायः प्रगतिशील तर्क के बजाय विवादित राजनीति को परिलक्षित करेगा। अतः सार्वजनिक नीति की तार्किक युक्ति यह प्रतीत होती है कि यदि इसमें राजनैतिक समर्थन की कमी है तो इसका आगे बढ़ना असंभव है। जैसा कि बहुत से राजनैतिक टिप्पणीकारों ने उजागर किया है, सार्वजनिक नीति के क्षेत्र में संवेदनशील सिद्धान्त बनाने की अयोग्यता की समस्या नहीं है, यह भारत के राष्ट्र-राज्य की संरचना में है; प्रायः जहां किन्हीं संगत और तार्किक संरचना पर पहुंचने के बजाय लोकतंत्र को विरोधाभासी दृष्टिकोणों को जगह देने के तौर पर परिभाषित किया जाता है। कोठारी आयोग की रिपोर्ट अथवा शिक्षा का अधिकार विधेयक समान रूप से इसी तरह के राजनैतिक विरोधाभासों के दबावों के अधीन हैं।

ऐसा नहीं है कि सामाजिक आन्दोलन ऐसे विवादों से मुक्त हैं। उदाहरण के लिए भाषा को लेते हैं, वैश्विक शैक्षिक शोध समर्थन करते हैं, और कोठारी आयोग की रिपोर्ट की राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के विचारों में भी समाहित है, कि विकासात्मक वर्षों में शिक्षण के माध्यम के तौर पर मातृभाषा सीखना बच्चों के लिए अनिवार्य ही नहीं है, बल्कि बाद में द्वितीय भाषा में क्षमता को अर्जित करने में भी अत्यधिक मदद करता है। अतः यह किसी भी नीति में अनिवार्यतः परिलक्षित होगा। हालांकि, दलित राजनीति की ओर से आने वाले प्रतिपक्षी विचार को कोई भी सरसरी तौर पर खारिज नहीं कर सकता। अंबेडकर से लेकर बहुत से दलित विचारकों और आन्दोलनों ने मातृभाषा अथवा हिन्दी पर ऐसे जोर का विरोध किया है। वे दावे से कहते हैं कि दलित-मुक्ति स्थानीय भाषाओं के जाति-आधिपत्य की मुक्ति से जुड़ी है, अतः वे इसी क्रम में बच्चों की शिक्षा में अंग्रेजी भाषा के 'मुक्तिदायी' प्रभावों को लाने के लिए इसे आरंभ से ही पढ़ाए जाने पर जोर देते हैं। यह एक विवाद है, जिस पर लोकतांत्रिक बहस से और धैर्य से पार पाई जा सकेगी। भारत के कुछ निश्चित 'वैश्विक' अभिजन भी अंग्रेजी को पूरी तरह भिन्न कारणों से महत्त्वपूर्ण मानते हैं, यह एक और जटिलता है जिसे इसमें शामिल करने की आवश्यकता है। इन जटिल बहसों को ऐसा क्रान्तिकारी अलगाववादी सशक्त पक्ष लेकर नहीं सुलझाया जा सकता, जो व्यक्तिवादी क्रान्तिकारी छवि बनाने में मदद कर सकता है, लेकिन बच्चों की शिक्षा को बेहतर बनाने के प्राथमिक उद्देश्य को मुश्किल बनाएगा।

अकादमिशियनों और सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा जिस हद तक राजनीति को प्रभावित किया जा सकता है उसकी कुछ निश्चित सीमाएं हैं, व्यापक जनसमुदाय और संस्थानों के संगठित विरोध की तुलना में व्यक्तिवादी वाग्जाल विशेष रूप से कम प्रभावकारी होता है। इसमें यह निहित नहीं है कि हम ऐसे कर्म से बाहर बने रहें, इसका आशय हमारी हस्तक्षेपकारी मजबूतियों के विनम्र मूल्यांकन की आवश्यकता है। इस संदर्भ में यह मांग खासतौर पर राजनैतिक रूप में अव्यवहारिक है कि विधेयक को 86वें संशोधन को पुनः संशोधित करने तक रोक दिया जाना चाहिए। यह सही है कि 86 वां संशोधन पीछे ले जाने वाला है, कि यह उन्नीकृष्णनन फैसले की तुलना में दो कदम पिछड़ा है, कि बच्चे की उम्र 6 से 14 के बजाय 0 से 18 होनी चाहिए। हालांकि, हम उस सरकार से क्या अपेक्षा करते हैं जिसने मॉडल विधेयक को राज्यों द्वारा विधेयक लाने के लिए हीन दर्जा दिया, जिसके उच्च स्तरीय समूह ने समेकन किया कि यह कानून के बतौर बहुत खर्चीला था, जिसके योजना आयोग ने निजी स्कूलों के अनुकूल करने के लिए प्रत्येक चीज को हटाने की कोशिश की और वाउचर प्रणाली लाने की गुहार लगाई तथा जिसके कानून विभाग ने गुणवत्ता से जुड़े सभी खण्डों को हटाने की कोशिश की ? सरकार नव-उदारवादी तरीके से काम नहीं कर रही है, यह नव-उदारवादी है। यह आश्चर्यजनक है कि ऐसे कुछ प्रयास वास्तव में निष्फल कर दिए गए और यह जन दबाव की मान्य सफलता की ओर संकेत करता है; लेकिन, किसी को भी समान रूप से वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था पर ऐसे जन दबाव की सीमाओं के बारे में व्यवहारिक होना चाहिए।

समान स्कूल व्यवस्था और समावेशी शिक्षा का मुद्दा सिर्फ इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि कोठारी आयोग की रिपोर्ट क्या कहती है और क्या नहीं कहती- यह अपने आप में महत्त्वपूर्ण है। कोठारी आयोग की रिपोर्ट में इसे स्थित करने का फायदा यह है कि यह एक नीति

की रूपरेखा को वैधानिकता प्रदान करता है, लेकिन यह विरोधाभास भी लाता है, जो कि छुपा नहीं है। भारतीय राजनैतिक व्यवस्था, खासतौर से उदारवादी, वाम, लोकतांत्रिक और समाजवादी पार्टियां ऐसे समावेशीपन के लिए साथ आने के लिए संकल्पित नहीं हैं, जैसा कि बाद में विधेयक के विरोधी सुझाते प्रतीत होते हैं कि विधेयक ऐसे कारणों का समर्थन करता है कि संसद से निकलने का अब बहुत कम अवसर है। संसद के भीतर उनकी वास्तविक स्थिति परिभाषित होती है अथवा राजनैतिक दल संसदीय स्टेण्डिंग समिति में इन बदलावों के लिए दबाव नहीं डालता; दल के सदस्यों के द्वारा गैर-संसदीय मंचों पर सार्वजनिक वक्तव्यों से दल के पक्ष को भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए। संसद में विधेयक पर बहस को बंद करने की कुछ लोगों की याचिका को लोकसभा की अध्यक्षा द्वारा अनसुना कर देना और राष्ट्रपति द्वारा भी असंवैधानिकता के आरोप के बावजूद विधेयक को वापस करने की याचिकाओं को अनसुना कर देना स्पष्ट प्रमाण है कि संवैधानिक और राजनैतिक व्यवस्था विभिन्न याचिकाओं में प्रस्तुत किए गए विचारों को कैसे देखती है।

निश्चित ही कोई भी बिहार सरकार द्वारा समाप्त की गई स्थिति में इसे खत्म कर सकता। इसने प्रचार और भले इरादों की एक साफ प्रस्तुति के रूप में समान स्कूल पर एक नीति निरूपित की, जिसे स्पष्ट रूप से प्रगतिशील माना जाता है। बिहार सरकार का इस नीति को क्रियान्वयन योग्य नहीं मानकर स्थगित करने का निर्णय स्पष्ट रूप से बुरा परिणाम है (बिहार के मुख्यमंत्री और प्रमुख सचिव, शिक्षा के साथ 26 जनवरी, 2008 में पटना में हुए शिक्षा सम्मेलन में बातचीत)। लेखक इसे अच्छी संदर्भ सामग्री की तरह इस्तेमाल कर सकते हैं, लेकिन क्या इससे बच्चों का भला हुआ ? क्या हम 'पूर्ण' के अलावा कुछ नहीं चाहने वाले धर्मयोद्धा बनना चाहेंगे-और यदि यह धर्मयुद्ध अगले 50 से 100 साल ले, (अभी तक आजादी से 62 वर्ष लग चुके हैं) तो क्या यह वर्तमान में 6 से 14 आयुवर्ग के 20 करोड़ बच्चों के प्रति हमारे सरोकारों को इंगित करता है ? यहां तक कि जयघोषित नरेगा (एनआरईजीए) कुछ भी दावा करे, पूर्ण है ? कोई भी 100 दिन के लिए काम उपलब्ध कराने की आलोचना कर सकता है जबकि सामाजिक आंदोलन की मांग 200 दिनों की थी। शहरी गरीबों को छोडकर, बिना ग्रामीण गरीबी के बुनियादी मुद्दे को उठाए जो कि पूंजी और जमीन के निजीकरण के गंभीर रूप से जटिलता से जुड़ा है। पर यह गरीबी से कुछ बेहतरीन तात्कालिक 'राहत' प्रदान कर रहा है। क्या हमें भूमि सुधारों के पूरा होने तक इसे रोके रखने की मांग और इसका विरोध करते रहना चाहिए ? अथवा क्या इसका स्वागत करते हुए इसके प्रावधानों में सुधार नहीं होने तक और भूमि सुधारों की लड़ाई को जारी रखने की कोशिश करनी चाहिए ? कक्षा 8 तक 80 प्रतिशत बच्चे सरकारी स्कूलों में हैं और शेष सहायता प्राप्त और गैर-सहायता प्राप्त निजी स्कूलों में हैं। क्या हमें वर्तमान कानून के प्रावधानों को 80 प्रतिशत के लिए स्थगित कर देना चाहिए और कुछ निश्चित नियमों को 20 प्रतिशत के लिए-जब तक हम निजी स्कूलों के अस्तित्व की संवैधानिक वैधता को समाप्त कर पाएं, जैसा कि कुछ आलोचक उन्हें खारिज करने पर तुले हैं, जिसे कोठारी आयोग भी समाप्त नहीं कर पाया। यदि ठीक से पढ़ें और व्याख्या करें तो क्या वे अमहत्त्वपूर्ण अथवा चूर-चूर कर देने वाले हैं ? या तो हम निजी स्कूलों को अवैध घोषित करने की कोशिश कर सकते हैं अथवा हम प्रत्येक पड़ोसी सरकारी स्कूल को ऐसी गुणवत्ता का बनाने की कोशिश करें (जैसा कि कुछ हद तक सरकार द्वारा संचालित केन्द्रीय विद्यालय चलते हैं) ताकि निजी स्कूलों के बजाय माता-पिता अपने बच्चों को उनमें भेजना पसंद करें। जैसा कि शैक्षिक रूप से अग्रणी देशों ने निजी स्कूलों को अवैध घोषित किए बिना, राजकीय स्कूलों को अच्छा अथवा बेहतर और निःशुल्क बनाकर यह सुनिश्चित किया कि बच्चे पड़ोस के राजकीय स्कूलों में जाएं।

"कक्षा 8 तक 80 प्रतिशत बच्चे सरकारी स्कूलों में हैं और शेष सहायता प्राप्त और गैर-सहायता प्राप्त निजी स्कूलों में हैं। क्या हमें वर्तमान कानून के प्रावधानों को 80 प्रतिशत के लिए स्थगित कर देना चाहिए और कुछ निश्चित नियमों को 20 प्रतिशत के लिए-जब तक हम निजी स्कूलों के अस्तित्व की संवैधानिक वैधता को समाप्त कर पाएं, जैसा कि कुछ आलोचक उन्हें खारिज करने पर तुले हैं, जिसे कोठारी आयोग भी समाप्त नहीं कर पाया।"

जनविज्ञान आन्दोलन के हिस्से के तौर पर, देशभर के राज्य, जिला और यहां तक कि उप-जिला स्तरीय सार्वजनिक मंचों, शिक्षक संगठनों, छात्र और युवा समूहों के साथ, सामाजिक आन्दोलनों और सामान्य जन; लगभग सभी राजनैतिक दलों के साथ और नौकरशाही व्यवस्था के साथ निर्मम अभियान चलाने के बाद यदि यह प्रयोजनवाद से उत्पन्न जान पड़ता है, तो यह ऐसा ही है। खुले दिल से, यह कानून के उचित क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने का समय है ताकि 6 से 14 आयुवर्ग के करीब 20 करोड़ बच्चों को लाभ मिले; कानून में विभिन्न सुधार लाने के लिए उचित संशोधन करवाने के लिए, जन्म से 18 वर्ष के बच्चों को लाभ प्राप्त हो, निजी स्कूलों का उचित नियंत्रित किए जाएं, कुछ वर्षो में स्कूल के नियमों और मानदण्डों के अनिवार्य प्रपत्र में सुधार हो और बहुकक्षीय शिक्षण आदि नहीं हो, इसके लिए लगातार लड़ने की जरूरत है।

एक उम्मीद है कि आलोचक अपनी रणनीति पर पुनर्विचार करेंगे। उनमें से कुछ कानून में संवैधानिक कमियों से बहुत क्षुब्ध प्रतीत होते

हैं। उदाहरण के लिए, वी. पी. निरंजनाराध्या 20 अगस्त, 2009 के 'द हिन्दू' में पूर्णता के मसले पर जोर देते हैं कि 'विधेयक का लोकसभा में पारित किया जाना अत्यधिक दुखदायी और असंवैधानिक' है और 'संविधान की रक्षक के तौर पर भारत की माननीया राष्ट्रपति से इस विधेयक को वापस संसद को लौटाने' की मांग करते हैं।

कुछ अन्य लोगों द्वारा राष्ट्रपति की ही तरह एक समान याचिका लोकसभा की अध्यक्षा से विधेयक को लोकसभा के पटल पर रखने से पहले दी जा चुकी थी। यह स्पष्ट है कि विधेयक को अपनी मंजूरी देते हुए, राष्ट्रपति ने निरंजनाराध्या अथवा उनके सम्मुख याचिका में दिए गए तर्क में किसी तरह की खूबी नहीं देखी जैसे कि लोकसभा की अध्यक्षा ने भी पहले की याचिकाओं में किसी तरह की खूबी नहीं देखी। इसके निहितार्थ स्पष्ट हैं: या तो आलोचकों और याचिकाकर्ताओं द्वारा रखे गए तर्क और व्याख्याएं असंतोषजनक या दोषपूर्ण थीं अथवा दो सर्वोच्च संवैधानिक प्रमुखों ने अपनी संवैधानिक जिम्मेदारियों का उल्लंघन किया। आलोचकों को इस पर ध्यान देना चाहिए। यदि वे अपने तर्कों से सहमत हैं, उन्हें अपने मुद्दे को इस देश के संविधान के अन्तिम और बाध्यकारी व्याख्याकार, सर्वोच्च न्यायालय में ले जाना चाहिए। हालांकि, यदि वे सर्वोच्च न्यायालय में लोकसभा अध्यक्षा और राष्ट्रपति के निर्णयों को चुनौती देने में अनिच्छु हैं, तो इस मुद्दे के बारे में अपनी आपत्तियों पर पुनर्विचार करने की उनकी जिम्मेदारी है और उन्हें सामान्य जन को स्पष्ट रूप से बताना चाहिए। जिनके लिए यह केवल अकादमिक व सार्वजनिक मसला है और जिन्हें वास्तविक क्रियान्वयन में कुछ नहीं करना है उनकी तुलना में शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय बहुत से जन संगठन हैं जो शिक्षा अधिकार कानून के क्रियान्वयन से जुड़ना चाहते हैं और वे इस कानून को अस्वीकार की तीखी पुकारों से काफी भ्रमित हो चुके हैं। ◆

शिक्षा विमर्श का आगामी विशेषांक

शिक्षा का समाजशास्त्र-I

आधुनिक शिक्षा का विकास

औद्योगिक दुनिया में शिक्षा : स्टीवन ब्रिन्ट
भारतीय शिक्षा व्यवस्था का उद्भव और संचालन : अपर्णा बसु
सीखने की विरासत : पश्चिमी शिक्षा का इतिहास : एडवर्ड जे. पावर
औपनिवेशिक शिक्षा नीतियां : एक तुलनात्मक नजरिया : अपर्णा बसु
भारतीय शिक्षा पर मैकॉले की टिप्पणी : थॉमस बैबिंगटन मैकॉले

अतिथि संपादक : अमन मदान

मूल्य : 50 रुपए **(व्यक्तिगत)**
60 रुपए **(संस्थागत)**